







# संपादकीय

## भारत के खिलाफ भीतरी चाल रचने वालों की कुचक्की की बूँद

भारतीय खुफिया एजेंसियों द्वारा पाकिस्तान समेत दुनिया के तमाम देशों में रहने वाले दुश्मन या भारत के खिलाफ घट्टवंत्र रचने वालों को भारतीय खुफिया एजेंसियों द्वारा खत्म किया जा रहा है। ब्रिटिश अखबार 'द गार्जियन' में यह खबर प्रकाशित हुई है जिससे पाकिस्तान में अचानक खलबली मच गई है। भारत सरकार ने इस आरोप को सिरे से खारिज करते हुए इसे छूटा और दुर्भावनापूर्ण भारत विरोधी प्रचार बताया। सबाल यह भी उठ रहा है कि पाकिस्तान संभवतः ये हत्याएं स्वयं करवा रहा हो द गार्जियन दुनिया भर में बेहद समानित 202 वर्ष पुराना अखबार है। सेंट्र-लेफ्ट विचारधारा वाला यह अखबार अपने स्कूप्स यानी सनसनीखेज खबरों के लिए भी जाना जाता है। अखबार ने 2019 में पुलवामा आतंकवादी हमले के बाद भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए उठाए गए साहसिक कदम की भी बात की है। इसने 2020 से अब तक भारत के खिलाफ सजिश रचने वाले बीस आतंकवादियों की हत्या अज्ञात हमलावरों द्वारा होने की भी चर्चा की है। पाकिस्तानी मीडिया इस रिपोर्ट के हवाले से कह रहा है कि मोदी सरकार ने इन हत्याओं के आदेश दिए और यह भी कि रॉ कुख्यात एजेंसी है। पाकिस्तान को सबसे खतरनाक देश कहने वाले अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन ने अभी बीते दिनों अचानक उसका समर्थन करते रहने का बयान देकर चौंका दिया था। उधर, चीन का भी पाकिस्तानी के प्रति सकारात्मक रुख स्पष्ट है। ऐसे में जब देश में आम चुनाव चालू है, पाकिस्तान जैसे देश के प्रति अपना झुकाव दर्शने वाले देश या बयान दीर्घकालिक कूटनीतिक संकेत दे रहे हैं। अपने देश की सुरक्षा को लेकर सतर्क रहना और आतंक फैलाने के मंसूबों को ध्वस्त करना विश्व शांति के लिए बेहद आवश्यक है। खासकर ऐसे समय में जब दुनिया भर को आतंकवाद को प्रत्रय देने के मामले में पाक की करतूतें किसी से छिपी नहीं हैं। विभिन्न अवसरों पर विश्व मंच से बार-बार इस बात को दोहराया गया है, और पाकिस्तान को चेतावनी भी दी जाती रही है। विश्व पटल पर तेजी से मजबूत होती जा रहे भारत के प्रति वैमनस्य रखने वाली मानसिकता की अनदेखी नहीं जानी चाहिए। भारत सरकार को इस पर सिर्फ विरोध ही नहीं करना चाहिए, बल्कि सख्त जवाब की दरकार भी करनी चाहिए ताकि किसी भी दुष्प्रचार का पर्दाफाश कर अपना पक्ष स्पष्ट किया जा सके।

विजय विद्रोही

राजस्थान के इस लोकसभा चुनाव में तान बात साफ-साफ दिखाई देती है। एक, यह एक लहर विहीन चुनाव है, हालांकि माहौलबंदी जेरूर भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में है। दूसरी बात, सन् 1980 से लेकर 2019 तक राज्य में हुए ग्यारह लोकसभा चुनावों में बिना लहर वाले चुनाव में भाजपा और कांग्रेस के बीच सीटें करीब आधी-आधी बंटती रही हैं। तीसरी, बिना लहर के चुनाव में जिस दल के पक्ष में ज्यादा माहौलबंदी होती है, वह करीब 70-80 फीसदी सीटें निकाल लेता है। मगर दूसरे दल के हिस्से में भी 20 से 30 फीसदी सीटें आ ही जाती हैं। राज्य में सन् 1991 और 1996 के आम चुनाव बिना किसी लहर के थे। 1991 में राज्य की 25 सीटों में कांग्रेस को 13 और भाजपा को 12 सीटें मिली थीं। 1996 में दोनों दलों को 12-12 सीटें मिलीं। एक सीट निर्दलीय के खाते में गई। मगर साल 1999 में कारगिल युद्ध में भाजपा के पक्ष में माहौल बना, तो उसने 16 सीटें निकाल लीं। कांग्रेस को नौ सीटों से ही संतोष करना पड़ा। इसी तरह, 2009 में तत्कालीन मनमोहन सरकार के अर्थक मोर्चे पर अच्छे दिन से बने माहौल का फायदा उठाते हुए कांग्रेस ने 20 सीटें जीत लीं, तो बीजेपी को पांच मिली इस बार भी बिना लहर का ऐसा चुनाव है, जिसमें भाजपा का पलड़ा भारी है, लेकिन साल 2014 और 2019 की तरह कांग्रेस का सूपड़ा साफ होने की संभावना या आशंका (अपनी-अपनी नजर में) कम नजर आती है। जाहिर है, इस बार के आम चुनाव दिलचस्प हो गए हैं। साल 2014 के बाद पहली बार भाजपा नेता भी मान रहे हैं कि चार-पांच सीटों पर उर्वे टक्कर मिल रही है। एक दशक बाद भाजपा ने राज्य में अपने आधे उम्मीदवार बदले हैं। पहली बार उसने कांग्रेस से आए दो-दो नेताओं को टिकट दिया है। साल 2023 के विधानसभा चुनावों में भाजपा ने छह लोकसभा सांसदों को विधानसभा चुनावों में उतारा था। तीन जीते-तीन हारे। इससे यह साफजाहिर हुआ था कि



सांसदों के खिलाफसत्ता-विरोधी रुझान है, लिहाजा 25 में से 11 नए चेहरे उतारे गए हैं। बाहर से लाए गए नेताओं और थोक में भर-भरकर शहर और जिला स्तरीय नेताओं को पार्टी में शामिल करने से कुछ जगह पुराने कार्यकर्ताओं में रोप भी देखने को मिल रहा है। 2014 के बाद से पहली बार हुआ है कि भाजपा के एक सांसद राहुल कस्वा कांग्रेस के टिकट पर चूरू से चुनाव लड़ रहे हैं, तो बड़े गुर्जर नेता प्रह्लाद गुंजल कांग्रेस के टिकट पर कोटा में लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला को टक्कर दे रहे हैं। दो बार की मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे इस बार अपने बेटे दुष्यंत सिंह की झालावाड़ सीट तक सिमट गई हैं। जहां तक कांग्रेस पार्टी की बात है, तो 2014 के बाद पहली बार इसने तीन सीटों पर गठबंधन किया है। नागौर की सीट आरएलपी के हनुमान बेनिवाल के लिए और सीकर की सीट सीपीएम के अमरा राम के लिए छोड़ी गई है। इस बार पार्टी के बड़े नेताओं ने चुनाव लड़ने में आनाकनी दिखाई। अशोक गहलोत और सचिन पायलट के बीच की सियासी अदावत में ऐसा पहली बार हुआ है कि टिकट वितरण में पायलट की अधिक चली और कम से कम पांच सीटों पर वह अपने नेताओं को टिकट दिलवाने में कामयाब रहे हैं। इधर, प्रधानमंत्री मोदी अपनी रैलियों

में कांग्रेस के घोषणापत्र से लेकर अन्य मुद्दों पर जो भी बोलते हैं, दूसरे नेता उसे दोहरा भर रहे हैं। जहां तक राज्य के मुद्दों की बात है, तो भाजपा पूर्वी राजस्थान में चंबल और यमुना के पानी को पहुंचाने की योजना के आधार बना रही है। राम मंदिर को भी भुनाने का कोशिश हो रही है। उधर कांग्रेस ने चुनाव कमेटी जरूर बनाई है और उसका घोषणापत्र भी सामने आ चुका है लेकिन मतदाताओं तक घोषणापत्र की खास-खास बातों को सरल-सहज भाषा में पहुंचाने के गंभीर प्रयास दिख नहीं रहे। कांग्रेस को राहुल गांधी का इंतजार है ऐसा लगता है कि कांग्रेस पूरे चुनाव को सीट-दर-सीट के हिसाब से लड़ रही है। सचिन पायलट की मांग ज्यादा है और वह मोदी सरकार के दस सालों के हिसाब सामने रखकर बोट मांग रहे हैं। सबसे रोचक मुकाबला शेखावाटी और बाड़मेर में है। बाड़मेर जैसलमेर की सीट क्षेत्रफल के हिसाब से दुनिया का सबसे बड़ी लोकसभा कहलाती है। यहां 26 साल वे युवा रविंद्र सिंह भाटी निर्दलीय लड़ रहे हैं और कांग्रेस की जीत का आधार बन सकते हैं। उधर, शेखावाटी की तीनों सीटों चूरू, झुंझुनूं और सीकर में इस बार भारी उलटफेर हो सकता है। चूरू में बीजेपी ने दो बार वे सांसद राहुल कस्वां का टिकट काटा, जिनके पिता भी

# विचार

## जल संरक्षण की आवश्यकता जरुरी

भारत डोगर

जहां एक ओर दूर-दूराज के गांवों में नल से जल मिलने की प्रसन्नता है, वहीं यह जरूरत भी बढ़ गई है कि नलों और पाइपों के लिए पानी मिलता रहे। इसके लिए जल संरक्षण को मजबूत करना चाहिए दिशा के परंपरागत जल संरक्षण उपायों से भी बहुत कुछ संख्या जा सकता है। बुंदेलखण्ड जैसे कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां जल प्रबंधन और उपलब्धि के परंपरागत और नये तौर-तरीकों में बहुत अंतर है। जहां पहले तालाबों में जल-संग्रहण और इसके माध्यम से आसपास के जल स्तर को ऊंचा रखते हुए कुछ चुने हुए स्थानों पर कुएं बनवाने को महत्व दिया जाता था, वहीं इन दिनों तालाबों की उपेक्षा कर काफी मनवाहे ढंग से जगह-जगह नलकूप और हैंडपंप लगाए गए हैं। बड़ी संख्या में नलकूप विफल रहे हैं, हैंडपंप भी कुछ समय बाद जवाब दे गए। कुछ समय के लिए नई सुविधाएं मिलने पर परंपरागत तौर-तरीकों की उपेक्षा होने लगती है, जो बाद में मंहगी पड़ती है क्योंकि नया लाभ स्थायी सिद्ध नहीं होता। इस तरह क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में न रख कर खर्च किया गया बहुत सा पैसा अपेक्षित लाभ नहीं दे पाता और कई स्थानों पर तो स्थिति पहले से भी ज्यादा खराब हो जाती है। बुंदेलखण्ड में कुछ स्थानों पर दूर्यूबवेलों के आने के बाद पहले से बने कुएं सूखने लगे। जहां भूजल उपलब्धि की स्थिति दूर्यूबवेलों के अनुकूल न हो, वहां जबरदस्ती इसी नीति को अपनाने से संतोषजनक और स्थायी समाधान मिल ही नहीं सकता। नल या हैंडपंप, नलकूप या पाइपलाइन, ये सब कई गांवों में ज्यादा नजर आ रहे हैं पर जिस भूजल से, तालाब या झरने से इन्हें पानी मिलता है, यदि उनमें ही पानी कम होने लगे तो भला इन निर्माण कार्यों से क्या समस्या हल होगी। पिछले लगभग दस-पंद्रह वर्षों में हमारे देश में भूजल स्तर में बहुत तेजी से गिरावट आई है। पहाड़ी क्षेत्रों से कितने ही झरनों के सूखने या पतले पड़ने के समाचार हैं। बहुत बड़ी संख्या में तालाब मैदान जैसे बन गए हैं, उन पर अतिक्रमण हो चुका है या ये बुरी तरह जीर्ण-शीर्ण स्थिति में पड़े हैं। जल की कमी के संकट को जल प्रदूषण ने और भी विकट कर दिया है।

नल के गांकट नो बोपतारी

कई क्षेत्रों में जल के संकट की परवाह न करते हुए ऐसे उद्योग लगाए जा रहे हैं जो जल का अत्यधिक उपयोग करेंगे तथा जल प्रदूषण में बृद्धि करेंगे। कछु ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां जल संकट को नन्जरांदाज करते हुए जल का अत्यधिक उपयोग करने वाली ऐसी नई फसलों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिनका लाभ कुछ पहले से समृद्ध लोगों तक सीमित रहेगा परं जिनके दुष्परिणाम और नीचे गिरने वाले भूजल के रूप में जनसाधारण को भागते पड़ेंगे। शाहरी क्षेत्रों में पांच-सितारा होटल, लॉन, गोल्फ-कोर्स आदि अत्यधिक जल उपयोग वाली सुविधाओं के जुटाने में हम तेजी से आगे बढ़ रहे हैं जबकि अनेक बस्तियों में जल अभाव से हाहाकार है। अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तरह जल का बटवारा भी विषमता से ग्रस्त है, और यह विषमता जल संकट की स्थिति में असहनीय हो जाती है। एक ओर लोग पीने के पानी को तरसते रहें तथा दूसरी ओर पानी का अपव्यय होता रहे, यह वर्तमान की दृष्टि से तो अन्यायपूर्ण है ही, भविष्य में समस्या का स्थायी हल खोजने में भी रुकावट बनता है। इस विषमता के कारण जल वितरण और उपयोग का ऐसा नियोजन नहीं हो सकता जो सबकी प्यास बुझाने में समर्थ हो। सार्थक जल नियोजन के लिए जरूरी है कि निहित स्वाथरे के दबाव की परवाह न करते हुए सर्वाधिक प्राथमिकता इस बात को दी जाए कि हर व्यक्ति, हर झोंपड़ी, हर गांव की प्यास बुझाई जा सके। पानी के अन्य उपयोग-चाहे किसी नई फसल के लिए हों या किसी उद्योग के लिए-तभी सोचे-विचारे जाएं जब पहले इस बुनियादी जरूरत को संतोषजनक ढंग से पूरा कर लिया जाए। इस प्राथमिकता पर कायम रहने के साथ ही यह भी जरूरी है कि पीने के पानी की आपूर्ति के कार्य को केवल हैंडपंप लगाने या कुएं खोदने तक सीमित न रखकर उन सभी महत्वपूर्ण गतिविधियों और क्षेत्रों को ध्यान में रखा जाए जिनका असर पानी की उपलब्धि पर पड़ता है। किसी ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की योजना बनाई जा रही हो और वह इस ओर से अनभिज्ञ रहे कि ऊपर पहाड़ी पर जो जंगल काटा जाने वाला है।

# नेताजी आपकी पॉलिटिक्स क्या हैं...

ਹਰਾਜਦਰ

वालों का सिलसिला बढ़ जाता है, इसलिए सुर्खियों में ज्यादा रहता है। हमारे बीच कई नेता तो ऐसे हैं, जो अपने क्षेत्र के तकरीबन सभी दलों की 'विचारधारा' का स्वाद चख चुके हैं पिछले दिनों एक अंग्रेजी पत्रिका ने अपने मुख्यपृष्ठ पर सभी विचारधाराओं के ताबूत बना दिए, जिसका अर्थ हुआ कि विचारधाराएं अब मर चुकी हैं। इसके साथ ही डेनियल बेल की उस मशहूर किताब का जिक्र भी किया गया, जिसका शीर्षक था, द एंड ऑफ आइडियोलॉजी, यानी विचारधारा का अंत। 1960 के आसपास छपी इस किताब में दूसरे विश्व युद्ध के बाद की दुनिया का जिक्र करते हुए कहा गया है कि अब संसार को आगे बढ़ने के लिए राजनीतिक विचारधारा की जरूरत नहीं है। लेखक मान रहे थे कि तकनीक और तमाम अन्य विकास के बाद विचारधारा वाली जिद प्रासारिंग क नहीं रह गई। कुछ हद तक वह सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय वाली बात कहते थे। अपने बारे में उन्होंने कहा था कि मैं अर्थक विचारों के हिसाब से समाजवादी हूं, राजनीति के लिए उदारपंथी और संस्कृति के मामले में कट्टरपंथी। विचारधारा की जरूरत है या नहीं, इस पर बाद में लंबी बहसें चलीं। विचारधाराओं के युग में हमने क्या पाया और क्या खोया, इस पर भी चर्चाएं हुईं। ऐसी सोच भी सामने आई, जो विचारधारा को बहुत सी समस्याओं की जड़ मानती थी। भारत में एक विमर्श चला, जिसमें कहा गया कि 'विचारधारा विषय है'। इसका यह मतलब भी नहीं कि हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डेनियल

बेल जिस दुनिया में बैठकर यह अवधारणा दे रहे थे, वहां विचारधाराओं का पूरी तरह से सफ़ल्या हो गया। अमेरिका में आज भी डेमोक्रेटिक पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी, दो पृथक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसी तरह, ब्रिटेन में लेबर पार्टी, कंजर्वेटिव पार्टी और लिबरल डेमोक्रेट हैं। भले ही वे उस अर्थ में विचारधारा को दिल से लगाकर रखने वाली कट्टरपंथी पार्टियां नहीं हैं, जिस अर्थ में एक दौर के यूरोप में हुआ करती थीं। अक्सर यह भी कहा जाता है कि विचारधारा का अंत हुआ है, वैचारिकता का नहीं। इन पार्टियों के पास वैसे यूटोपिया नहीं हैं, जैसे विचारधारा वाले युग में हुआ करते थे। मगर उनके पास बहुत सारे अपने लक्ष्य हैं, बहुत सारे समान लक्ष्य भी हैं। समान लक्ष्यों को कैसे हासिल करना है, इसको लेकर उनकी सोच अलग-अलग है। संसाधनों का इस्तेमाल कैसे किया जाए, इसको लेकर भी मतभेद है। जब तक ये मतभेद रहेंगे, उनकी वैचारिकता भी अलग-अलग ही रहेगी। विचारधाराओं ने हमें दो और चीजें भी दी थीं— दुनिया को आदर्श बनाने के सपने और समर्पण। आदर्श को लेकर समझ और सपने तो समय के हिसाब से बदलते रहते हैं। सब जगह बदल भी गए, पर समर्पण पूरी तरह से विदा हो गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कम से कम पश्चिमी लोकतंत्रों में विचारों और वैचारिकता के प्रति समर्पण आज भी कमोबेश देखा जा सकता है। ठीक यहां पर भारत का लोकतंत्र थोड़ा, या शायद बहुत ज्यादा अलग हो जाता है। पश्चिम के देशों में आप नहीं पाएंगे कि डेमोक्रेट प्रतिनिधि ने इस्तीफा दिया और रिपब्लिकन पार्टी में शामिल हो गया। इस समय अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप के दोबारा राष्ट्रपति पद की रेस में आने को लेकर रिपब्लिकन पार्टी के पुराने लोगों में काफ़ी नाराजगी की खबरें हैं, लेकिन ये नाराज लोग जुलूस बनाकर डेमोक्रेटिक पार्टी में शामिल हो जाएंगे, ऐसी कोई आशंका नहीं है। जब हम पश्चिम में विचारधाराओं के अंत की बात करते हैं, तो वहां उसका अर्थ होता है, एक लीक पर चलने वाली पुरातन जिह्वी कट्टरता का अंत या नए युग के राजनीतिक प्रबंधन के आगे कुछ पुरानी धाराओं का अप्रासंगिक हो जाना। मगर भारत में इसका कारण राजनीति का पूर्हड़ अवसरवाद है। यहां विचारधाराएं तो बाद में खत्म हुईं, राजनीतिक मर्यादा, नैतिकता और प्रतिबद्धता को पहले श्रद्धांजलि दी गई। यह हमारे यहां सब जगह हो रहा है। प्रतिबद्धता जब राजपाट खोती जा रही है, तो सिंहासन काले धन और बाहुबल के हवाले होता जा रहा है। हालांकि, राजनीति में नैतिकता और प्रतिबद्धता के नाम पर समय-समय पर जिन लोगों ने सत्ता हासिल की, उनका हश्श भी हम देख खी चुके हैं। शुरू में हमने देखा था कि अपवाद सिर्फ कम्युनिस्ट पार्टियां हैं। राजनीति के तमाम झ़़़ञ्चावातों के बीच आज भी वे अपनी विचारधारा से चिपकी हैं, पर जिस तरह से उनकी ताकत और उनका भूगोल लगातार सिमटता जा रहा है, वह विचारधारा को लेकर कोई उम्मीद नहीं बंधाता।

# तमिल राजनीति और एक वीरान टापू....

एस श्रानवासन

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के एक प्रमुख अखबार ने अपने 31 मार्च के संस्करण में बताया कि पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा सन् 1974 में कच्चातिवु नामक द्वीप श्रीलंका को सौंपने का मसला लोकसभा चुनावों में तमिलनाडु में बड़ा मुद्दा बन सकता है। तमिलनाडु के भाजपा अध्यक्ष के अन्नामलाई से मिले दस्तावेज़ के आधार पर तैयार रिपोर्ट कहती है कि भारत



मछुआरों को अपनी ओर आकर्षित करना है। कच्चातिवु अतीत में तमिलनाडु में एक भावनात्मक मुद्दा रहा है। रामेश्वरम के मछुआरों ने द्वीप के पास मछली पकड़ने संबंधी अधिकार और अपने जाल सुखाने व नावों की मरम्मत की सुविधा की मांग की थी। यह मुद्दा 1980 और 1990 के दशक में सूबाई राजनीति में अक्सर उठाता रहा, जिसमें द्रमुक और अनाद्रमुक एक-दूसरे पर मछुआरों के अधिकारों को खत्म करने का आरोप लगाते रहे। पूर्व मुख्यमंत्री जयललिता ने केंद्र को पत्र लिखकर कहा भी था कि इस द्वीप को श्रीलंका से वापस ले लिया जाना चाहिए। मगर बीते एक दशक से अधिक वक्त से यह कोई मुद्दा नहीं रहा था, क्योंकि मछुआरों के पास अब बहेतर संचार सुविधा और उन्नत नावें आ गई हैं। वे अब कच्चातिवु के आसपास नहीं जाते, जहां उनके मछली पकड़ने पर प्रतिबंध है। इसके बजाय वे अब गहरे पानी में चले जाते हैं, यहां तक कि श्रीलंकाई टटों के करीब भी पहुंच जाते हैं और वहां के सुरक्षा बलों की नाराजगी मोल लेते हैं। दुर्भाग्यवश, मछुआरों की गिरफ्तारी, भारतीय नौकाओं की जब्ती और भारतीय मछुआरों पर गोलीबारी की नौबत आ जाती है, जिनसे दोनों पड़ोसी

देशों में तनाव भी पैदा होता रहा है। अजीब बात है तमिलनाडु में मछुआरों का मुद्दा और श्रीलंकाई तमिल के कल्पनाम् भावनात्मक मुद्दे रहे हैं, लेकिन इनके कभी भी राज्य या राष्ट्रीय चुनावों पर कोई असर नहीं पड़ा। परि भी, यह मुद्दा अनवरत राजनीतिक विमर्श में बना रहा है। वास्तव में, जो दल सिफ्र श्रीलंकाई मसले या मछुआरों के मुद्दों पर अपना जोर लगाते हैं, वे लोगों में अपनी जगह बनाने में विफल ही साबित हुए हैं। यह कारण है कि तमिलनाडु का एक बड़ा तबका हैरानी के भाजपा ने आखिर इस मुद्दे को अभी क्यों उठाया क्योंकि इसका मकसद कांग्रेस और उसके क्षेत्रीय सहयोगी द्रमुक को घेरने के अलावा दूसरा कारण नहीं दिखता। भाजपा यही बताने का प्रयास कर रही है विपक्षी गठबंधन किस तरह से देश के राष्ट्रीय हितों से समझौता कर चुका है। भाजपा की नजर कन्याकुमारी थूथुकुडी, नागरकोइल व रामनाथपुरम जैसे तटीय क्षेत्रों की लोकसभा सीटों पर है, जहाँ उसे लगता है, मछुआरों का मुद्दा प्रभावी साबित होगा। अगर इस मामले पर नजर डालें, तो करीब 1.9 वर्ग किलोमीटर का यह द्वीप भारत और सीलोन के बीच ब्रिटिश कब्जे से मुक्त हो गया है और इसके बाहरी तटों पर विवादित था। चूंकि ब्रिटिश हुक्मत इस

मसले का हल नहीं निकाल सकी, इसलिए उसने दोनों पक्षों के मछुआरों को द्वीप पर जाने की अनुमति दे दी। इसलिए, कच्चातिवु कभी भी भारत का हिस्सा नहीं था। आजादी के बाद जब यह मुद्दा पिर से उठा, तो 1974 में लंबी चर्चा के बाद भारत और श्रीलंका के बीच अंतरराष्ट्रीय समुद्री सीमा खींच दी गई और भारत ने इस द्वीप पर अपना दावा छोड़ दिया। इसमें दोनों पक्षों द्वारा वहां मछली पकड़ने का समझौता हुआ। साल 1976 में दोनों देशों के बीच विशेष आर्थिक क्षेत्र बना, जिसकी वजह से भारत ने मछली पकड़ने का अपना अधिकार वापस ले लिया। वास्तव में, भारत ने कन्याकुमारी की ओर से 'वाड्ज बैंक' के लिए सौदेबाजी की। चूंकि श्रीलंका को कच्चातिवु मिल गया, इसलिए उसने इस पर कोई दावा नहीं किया। नतीजतन, भारत को समुद्र में अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा मिला, जो विविधता के मामले में समृद्ध है और यहां मछली भी खूब है। कुछ पर्यवेक्षक तो इसके लिए इंदिरा गांधी की सराहना करते हैं, क्योंकि यह इलाका तेल व खनिज संसाधनों से भी समृद्ध है। चूंकि कच्चातिवु द्रमुक और अनाद्रमुक, दोनों के लिए विवादास्पद है, इसलिए वे दोनों दल एक-दूसरे पर आरोप उछालकर और केंद्र को भी धेर में लेकर तटीय इलाकों के मतदाताओं को लुभाना चाहते हैं। अभी यही सब हो रहा है। 'वाड्ज बैंक' कोई द्वीप नहीं है, बल्कि इको सिस्टम के लिए एक सामान्य शब्द है। दुनिया में ऐसे 20 वाड्ज बैंक हैं। भारत सरकार ने हाल ही में यहां तेल की खोज की प्रक्रिया शुरू करने का प्रयास किया था, लेकिन मछुआरों के विरोध के कारण इसे स्थगित कर दिया गया, क्योंकि उनको डर है कि इससे यहां के पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुंच सकता है। बेशक, इस पूरे मसले में कोई कांग्रेस पर शक कर सकता है या इंदिरा गांधी को विवादों में घसीट सकता है, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि वह इंदिरा गांधी ही थीं, जिन्होंने बांग्लादेश को आजाद कराया।







